बदलते मौसम का विज्ञान

- डा० (श्रीमती) रमा मेहता
वैज्ञानिक "ब"

पिछले वर्षों में पूरा देश इस सदी के सबसे भंयकर सूखे की चपेट में था. सूखे ने करोड़ों की फसल बरबाद कर दी, हजारों पशुओं को मौत के कगार पर ला दिया और लाखों परिवारों को दाने-दाने के लिए मोहताज कर दिया.बदलते मौसम का कहर केवल हमारे देश पर ही नहीं हैं, दुनिया भर में यह बीमारी फैल चुकी है. मौसम में हो रहे इन बदलावों का कारण जानने के लिए दुनिया भर में अनुसंधान हो रहे हैं.नए-नए सिद्धांत प्रतिपादित किए जा रहे हैं.वैज्ञानिकों के अनुसार अन्य कारणों के अलावा वायुमंडल में मौजूद दो गैसें--ओजोन और कार्बन डाइऑक्साइड--मौसम के निर्धारण और नियमन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं.

कार्बन डाइऑक्साइड की भूमिका

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा बहुत कम है -- दस हजार भाग में केवल तीन भाग--फिर भी धरती के तापमान को नियंत्रित रखने की जिम्मेदारी इसी पर है.सूर्य की किरणों से प्राप्त गर्मी का कुछ भाग वायुमंडल में वापस भेज दिया जाता है. अधिकतर गर्म किरणें वायुमंडल को भेदकर वापस ऊपरी वायुमंडल में चली जाती हैं, लेकिन गर्मी उत्पन्न करने वाली अवरक्त किरणें कार्बन डाइऑक्साइड को नहीं भेद पातीं और धरती के वातावरण को गर्म रखती हैं, कार्बन डाइऑक्साइड के इस प्रभाव को 'ग्रीन हाउस प्रभाव' कहा जाता है.इसी प्रभाव के कारण धरती का औसत तापमान 15 डिग्री सेल्सियस बना रहता है.

वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की कुल मात्रा 2300 अरब टन है. सामान्य मौसम-चक्र के लिए जरूरी है कि इसकी मात्रा लगभग इतनी ही बनी रहे. वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड की मात्रा का संतुलन बनाए रखने में सागर महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं. सागरों और वायुमंडल के बीच हर साल लगभग 200 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड का आदान-प्रदान होता है. इसी प्रकार ज्वालामुखी हर साल 100 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में छोड़ते हैं. दूसरी ओर पेड़-पौधे हर साल 60 लाख टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल से सोख लेते हैं. कार्बन डाइऑक्साइड की लगभग इतनी ही मात्रा वायुमंडल को जंतु-जगत के सांस लेने और वनस्पतियों के सड़ने से प्राप्त होती है.उपरोक्त आदान-प्रदान के कारण वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का संतुलन बना रहता है और मौसम नियमित रूप से आते-जाते रहते हैं.पर वर्तमान आंकड़ों के अनुसार वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड धीरे-धीरे बढ़ रही है.

यूं तो कार्बन डाइऑक्साइड बढ़ने के अनेक कारण हैं, लेकिन मुख्य रूप से कारखाने और मोटर वाहन इसके जिम्मेदार हैं. इन स्रोतों के जरिए पिछले लगभग 140 सालों में 150 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में पहुंच चुकी है. इसमें से लगभग आधी यानी 80 अरब टन पिछले 20 वर्षो में ही वायुमंडल में आई है. हर साल दुनिया में 5 अरब टन लकड़ी-कोयला जलाया जाता है जिससे लगभग 6 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में पहुंचती है. इसमें 4% प्रतिवर्ष की दर से बढ़ोतरी हो रही है. वनों की कटाई के कारण अब भूमि के ज्यादा हिस्से पर घूप पड़ती है जिससे मिट्टी में मौजूद जैविक पदार्थो का ऑक्सीकरण

ज्यादा होने लगा है और वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड भी बढ़ने लगी है. अनुमान है कि इस स्रोत से वायुमंडल में हर साल 2 से 4 अरब टन कार्बन डाइऑक्साइड पहुंचती है.

ओजोन की भूमिका

धरती से 15 किलामीटर तक के वायुमंडल में, जिसे ट्रोपोस्फीयर कहा जाता है, ओजोन बिल्कुल नहीं पाई जाती. लेकिन इसके ऊपर 50 किलोमीटर तक के वायुमंडल में मुख्य रूप से यही गैस पाई जाती है. वायुमंडल के इस भाग को स्ट्रेटोस्फीयर कहा जाता है. वायुमंडल में मौजूद ओजोन की यह पट्टी धरती पर मौजदू प्राणियों और वनस्पतियों के लिए सुरक्षा कवच का काम करती है.

सूर्य से आने वाली घातक पराबैंगनी किरणों का 99% भाग यही पट्टी सोख लेती है. अगर ओजोन की मात्रा कम हो जाए तो मनुष्य में तरह-तरह के रोग पैदा हो जाएंगे. सबसे ज्यादा असर पेड़-पौधों पर होगा. प्रकाश-संश्लेषण की दर में, जिसके द्वारा पौधे सूरज की रोशनी से अपना भोजन बनाते हैं, बहुत ज्यादा कमी हो जाएगी. पौधों की बढ़वार मंद हो जाएगी, जंगल सूखने लगेंगे और बीजों का अंकुरण तो लगभग बंद ही हो जाएगा. इससे दुनिया भर के मौसम में व्यापक बदलाव आने की संभावना है.

हाल में हुए अध्ययनों से पता चला है कि वायुमंडल में ओजोन की मात्रा धीरे-धीरे कम होती जा रही है. उत्तरी और दक्षिणी गोलार्द्धों में क्रमशः आर्कटिक और अंटार्क्टिक के ऊपर ओजोन के घनत्व में कमी होती जा रही है. अंतरिक्ष से देखने पर ऐसा लगता है जैसे ओजोन की परत में छेद हो गया हो.अंटार्क्टिका के ऊपर का छेद काफी बड़ा है और यह निरंतर बड़ा व गहरा होता जा रहा है, जबकि आर्कटिक के छेद में अभी खतरनाक सीमा नहीं हुई है वैज्ञानिकों के अनुसार अंटार्क्टिक पर ओजोन का घनत्व 40% कम हो चुका है.

अल नीनो और मानसून

मानसून शब्द की उत्पत्ति अरबी भाषा से हुई है, जिसका अर्थ है-- मौसम में होने वाला बदलाव. अरब सागर के ऊपर दक्षिण-पश्चिम से बहने वाली हवाओं को मानसूनी हवाएं कहा जाता है. इसकी उत्पत्ति तब होती है जब गर्मी में एशिया की धरती ज्यादा तपने लगती है और हिन्द महासागर उतना नहीं तपता. बादलों से भरी मानसूनी हवाएं पश्चिमी समुद्र तट से टकराती हैं और धीरे-धीरे उत्तर की ओर बढ़ती है. अगर किसी कारणवश ऐसा न हो तो हमारे यहां वर्षा नहीं होती, सूखा पड़ जाता है. 1987 के सूखे के पीछे हजारों किलामीटर दूर सागर सतह पर घट रही एक प्राकृतिक घटना का हाथ बताया गया है. इसे वैज्ञानिकों ने 'अल नीनो' का नाम दिया है. आमतौर पर यह होता है कि दक्षिणी प्रशान्त महासागर के ऊपर स्थित अधिक दबाव वाले क्षेत्र से हवाएं इंडोनेशिया के ऊपर स्थित कम दबाव वाले क्षेत्र की ओर बहती है. पर लगभग हर चार-सात साल में इसमें उलट-फेर हो जाता है. कम दबाव वाला क्षेत्र खिसक कर ताहिती के पास आ जाता है और हवा का रूख पलट जाता है. इस घटना से उत्तरी अमेरिका में बाढ़ आ जाती है, जबकी भारत सहित अफ्रीका, एशिया और आस्ट्रेलिया में सूखा पड़ता है. सूखे के अगले साल अच्छी बरसात होती है. मानसून समय पर आता है. आंकड़ो से पता चला है कि ऐसा होना अनिवार्य नहीं है. इस सदी में 21 बार 'अल नीनो' अपना असर दिखा चुका है, पर केवल 12 वीं बार ही अगले साल मानसून समय पर आया. इस बार मानसून फिर देरी से है. यानी मानसून केवल 'अल नीनो' से ही प्रभावित नहीं होता, इसके पीछे और भी कई कारण हैं.

मौसमी उथल-पुथल के पीछे सूरज

दिन-रात, गर्मी-सर्दी और आते-जाते मौसम सूरज पर निर्भर है. तो क्या मौसमी उथल-पुथल के पीछे भी सूरज का हाथ है ? इस सवाल का जवाब जानने के लिए वैज्ञानिकों ने काफी अध्ययन किए हैं.पता चला है कि सूर्य की क्रियाशीलता या निष्क्रियता मौसम के बदलाव में खास भूमिका निभाती है.वैज्ञानिकों के अनुसार हर 11 वें साल सूर्य की सतह पर मौजूद चुंबकीय धब्बों की संख्या बहुत बढ़ जाती है. इन काले धब्बों का तापमान, आस-पास के तापमान से कुछ कम होता है. इस दौरान सूरज की सतह पर क्रियाशीलता बहुत बढ़ जाती है, जिससे सूरज पहले की तुलना में दो प्रतिशत अधिक चमकने लगता है.गर्म भी अधिक हो जाती है. इससे धरती पर गर्मी बढ़ जाती है.

इसके विपरीत जब सूर्य शांत हो जाता है, तो धरती पर ठंड बढ़ जाती है. अमेरिका में कोलोराडों के वायुमंडलीय अनुसंधान केन्द्र के खगोल-भौतिक विज्ञानी जॉन एड्डी ने पता लगाया है कि सन् 1645 से 1715 के बीच सौर धब्बों की संख्या लगभग नगण्य हो गई थी और यही कारण था कि इस बीच यूरोप व अमेरिका में विकट सर्दी पड़ी. इस काल को मौसम विज्ञानी 'लघु हिम युग' भी कहते हैं. इस काल को प्रसिद्ध अंग्रेज खगोलविद् ई० वाल्टर मौंडर के नाम पर 'मौंडर न्यूनतम' भी कहा जाता है. पिछले सैंकड़ों सालों के मौसमीय आंकड़ों और सौर-धब्बों की क्रियाशीलता के बीच संबंध ढूंढने पर कुछ और संकेत भी मिले हैं जो सौर-धब्बों और मौसम के बदलाव के बीच के रिश्ते को पक्का करते हैं. उदाहरण के लिए पिछले 300 सालों में उत्तरी अमेरिका में पड़े सूखे, सौर-धब्बों के 11 वर्षीय चक्र के अनुरूप हैं. 12 वीं और 13 वीं शताब्दी में सौर-धब्बों की अत्यधिक क्रियाशीलता तथा यूरोप और अमेरिका में पड़ी अचानक गर्मी के बीच भी संबंध पाया गया है. उपग्रहों और अंतरिक्ष यानों द्वारा हुए अध्ययनों से भी यह पता चला है कि सौर-धब्बों की संख्या बढ़ने पर सूर्य की सतह पर बड़े-बड़े चुंबकीय तूफान उठते हैं, सौर लपटें धधकने लगती हैं. सौर लपटों से बहुत अधिक ऊर्जा के विद्युत-आवेशित कण निकलते हैं, जो अंतरिक्ष में आकर चुंबकीय गड़बड़िया उत्पन्न करते हैं. धरती की चुंबकीय शक्ति इन्हें ध्रुवों की ओर ले जाती है, जहां ये पृथ्वी के वायुमंडल के कणों से प्रतिक्रिया करके ध्रुवीय-ज्योति उत्पन्न करते हैं. सौर-तूफान में मौजूद अधिक ऊर्जा के विद्युत आवेशित कणों को इस प्रकार रोकने की कोई व्यवस्था नहीं है, इसलिए वे ऊपरी वायुमंडल के साथ प्रतिक्रिया करते हैं, जिससे मौसमों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

अलबीडो प्रभाव

वनों के गायब होने से वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड का संतुलन बिगड़ने के अलावा,, सूर्य के प्रकाश के परावर्तन पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है. पृथ्वी की सतह द्वारा सूर्य के प्रकाश के परावर्तन को 'अलबीडो प्रभाव' कहा जाता है. मान लीजिए सूर्य से ऊर्जा की 100 इकाइयां पृथ्वी की ओर चलती हैं. इनमें से 20 इकाइयों का वायुमंडल द्वारा अवशोषण कर लिया जाता है. बाकी 80 इकाइयां धरती के किसी ऐसे भाग से टकराती हैं, जहां से 40 इकाइंयों का परावर्तन हो जाता है, तो इसे 50 प्रतिशत अलबीडो कहा जाएगा. धरती की सतह के अनुसार इसमें विविधता आती रहती है.

वैज्ञानिकों ने पाया है कि बर्फ से ढके इलाकों में 80-95 प्रतिशत अलबीडों है, जबकि रेगिस्तानों का अलबीडो 25-30 प्रतिशत है. खेतों का अलबीडो 12-20 प्रतिशत पाया गया है, जबकि सदाबहार घने जंगलों का अलबीडों केवल 7-15 प्रतिशत होता है. जैसे-जैसे जंगल कटते जाएंगे अलबीडो का मान बढ़ता जाएगा. अधिक मात्रा में सूर्य की किरणों के परावर्तन से धरती का वायुमंडल गर्म हो जाएगा, जिससे हवाओं के आवागमन पर असर पड़ेगा.उदाहरण के लिए 'जेट-स्ट्रीम' को लें, जो हमारे मौसम के नियमन में महत्वपूर्ण

भूमिका निभाती है. पृथ्वी से लगभ 15-16 किलोमीटर की ऊंचाई पर 400 किलोमीटर की औसत गति से बढ़ने वाली पछुवा हवा को ' जेट-स्ट्रीम' कहा जाता है.

उत्तरी ध्रुवों की बर्फीली ठंडी हवा जब उष्ण प्रदेशों की गर्म हवा से मिलती है, तो 'जेट-स्ट्रीम' का निर्माण होता है. अलबीडो प्रभाव से उत्पन्न् होने वाला तापीय परिवर्तन इसमें काफी फेर-बदल कर सकता है, जिससे पूरी धरती का मौसम प्रभावित होने की आशंका है. मौसम वैज्ञानिकों की राय है कि अगर अलबीडो प्रभाव पर रोक न लगाई गई तो खासतौर से वर्षा प्रभावित होगी. सहारा के दक्षिणी हिस्से, भारत और मैक्सिको के सूखे इलाकों में अधिक वर्षा होगी, जबकि उत्तरी अमेरिका, कनाड़ा, यूरोप और रूस में वर्षा कम हो जाएगी.

ज्वालामुखी और मौसम

बड़े-बड़े ज्वालामुखियों के फटने से पृथ्वी के एक बड़े भाग का मौसम प्रभावित होता है. लावा पदार्थ के बड़ी मात्रा में वायुमंडल में छा जाने से न तो सूरज की किरणें धरती तक आ पाती हैं और न ही पृथ्वी की गर्मी बाहर निकल पाती है. तापमान का संतुलन बिगड़ने से मौसमी उथल-पुथल शुरू हो जाती है. ज्वालामुखी फटने और मौसमों की गड़बड के बीच सीधा संबंध पाया गया है, तथा इसके प्रमाण भी मौजूद हैं. मई, 1980 में अमेरिका में सेंट हेलेना पर्वत पर ज्वालामुखी फटने से वहां के दो राज्यों, मोंटाना और वायोमिंग पर लावा पदार्थों का बादल सा छा गया था. उसी साल अमेरिका में भयानक गर्मी पड़ी और यूरोप को बेमौसम सर्दी व बरसात का कहर झेलना पड़ा. इसी प्रकार मैक्सिकों में सन् 1982 में कड़ाके की सर्दी पड़ी और इसी साल यहां अलचिनाने नामक ज्वालामुखी भी फटा था.

मौसमों की उथल-पुथल के साथ जुड़ी सबसे बड़ी समस्या यह है कि इसके लिए किसी एक कारण को जिम्मेदार नहीं ठरहराया जा सकता. हो सकता है मौसम का बदलाव किसी एक कारण की वजह से हो रहा हो या कई कारणों का मिला-जुला प्रभाव हो. इसीलिए सन् 1978 में लगभग 140 देशों ने मिलकर एक विशाल मौसमी शोध प्रायोजना को कार्यान्वित किया था. इसका नाम था - 'मोनेक्स'. इसमें अमेरिका और भारत ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई. इस पर 2000 करोड़ रूपयों से भी ज्यादा खर्च किया गया. इसमें सैंकड़ों हवाई जहाज, पानी के जहाज और पनडुब्बी उपयोग में लाए गए. समुद्र के भीतरी और ऊपरी वातावरण का विस्तृत अध्ययन किया गया, तथा वायुमंडल की हवाओं को भी परखा गया. वैज्ञानिकों का दावा है कि इससे मिली जानकारी मौसमी फेरबदल समझने में बहुत मदद कर रही है.

अगर हमें बेमौसमी सदी-गर्मी, सूखा-बाढ़ आदि के प्रकोप से बचना है तो मौसमों में बदलाव लाने वाले कृत्रिम कारणों पर पूरी रोक लगानी होगी. वायु-प्रदूषण कम करना होगा, नाभिकीय परीक्षणों पर रोक लगानी होगी, वनों का सफाया रोकना होगा और ऐसे हर काम पर पाबंदी लगानी होगी जो किसी भी प्रकार से वायुमंडल को प्रभावित करें. यह सब कुछ अंतरराष्ट्रीय स्तर पर करना होगा क्योंकि वायुमंडलीय लहरें पूरे विश्व का भ्रमण करती हैं. प्राकृतिक कारणों पर रोक लगाना तो हमारे बस की बात नहीं उसे तो झेलना ही पड़ेगा.

* * * * *

NATIONAL INSTITUTE OF HYDROLOGY
ROORKEE- 247667 (U.P.)